International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 12-12-2021, Accepted: 27-12-2021, Published: 12-01-2022
Volume 8; Issue 1; 2022; Page No. 61-65

स्वातंत्र्य समर में चित्तौड़गढ़ विषयक हिंदी साहित्य की भूमिका

विकास कुमार अग्रवाल
व्याख्याता, हिंदी विभाग, राउमावि सतपुड़ा, चितौड़गढ़, राजस्थान, भारत

सारांश
यह शोध आलेख "स्वातंत्र्य समर में चित्तौड़गढ़ विषयक हिंदी साहित्य की भूमिका" पर केंद्रित है। लेखक ने चित्तौड़गढ़ की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका को हिंदी साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। चित्तौड़गढ़ को केवल एक दुर्ग नहीं, बल्कि त्याग, बलिदान, शौर्य और मातृभूमि प्रेम की सजीव प्रतीक भूमि बताया गया है, जहाँ वीर पुरुषों और वीरांगनाओं ने आज़ादी और सम्मान के लिए अपने प्राण तक न्योछावर कर दिए। शोध में विश्लेषण किया गया है कि बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में जब भारत में स्वतंत्रता आंदोलन तेज हो रहा था, तब हिंदी साहित्यकारों का ध्यान चित्तौड़गढ़ के ऐतिहासिक बलिदानों की ओर आकृष्ट हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर मैथिलीशरण गुप्त, श्याम नारायण पांडेय, हरिकृष्ण प्रेमी, रामकुमार वर्मा, गोविंद वल्लभ पंत और जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद जैसे साहित्यकारों ने चित्तौड़ की गौरवगाथा को अपने काव्य, नाटक और एकांकी के माध्यम से प्रस्तुत किया। लेख में गुप्त जी की 'भारत भारती' और 'रंग में भंग', पांडेय जी के महाकाव्य 'जौहर' और 'हल्दीघाटी', प्रेमी जी के नाटक 'राखीबंधन', वर्मा के 'दीपदान' और पंत के 'राजमुकुट' का विश्लेषण करते हुए यह बताया गया है कि चित्तौड़गढ़ की प्रेरणादायक गाथाएं स्वतंत्रता संग्राम में जनता को राष्ट्रीय चेतना, बलिदान और एकता के लिए प्रेरित करती रहीं। इस शोध का निष्कर्ष है कि हिंदी साहित्य में चित्तौड़गढ़ की स्वाधीनता परंपरा ने आजादी के आंदोलन को एक सांस्कृतिक, भावनात्मक और नैतिक आधार प्रदान किया, जिसने जनमानस में राष्ट्रीय भावना का संचार किया।

मूल शब्दः चित्तौड़गढ़, हिंदी साहित्य, स्वतंत्रता संग्राम, बलिदान, वीरता, राष्ट्रवाद, जौहर, पन्ना धाय, महाराणा प्रताप, राष्ट्रीय चेतना

चित्तौड़गढ़ भारत वर्ष के राजस्थान प्रान्त के सुदूर दक्षिण–पूर्व में स्थित एक विशाल और सुदृढ़ गिरि दुर्ग है। किंवदंतियों के अनुसार इस दुर्ग का इतिहास महाभारत काल से शुरु होता है। कहा जाता है कि पांडव अपने वनवास के दौरान पारस पत्थर की प्राप्त्यर्थ तपस्वी निरभैनाथ के पास मेसा पठार (जहाँ अब चित्तौड़ दुर्ग स्थित है) पर आये थे। संत वह देना नहीं चाहते थे इसलिए उसने असंभव शर्त पांडवों के समक्ष रखी कि यदि तुम एक रात में इस पठार पर दुर्ग का निर्माण कर सकते हो, तो यह पारस पत्थर ले जा सकते हो। पांडवों ने रात भर परिश्रम कर दुर्ग का निर्माण किया किन्तु सवेरा हो जाने व दुर्ग का निर्माण पूरा न होने के कारण संत की शर्त पूरी नहीं कर पाए और पारस पत्थर लेने से वंचित रह गए।

ऐतिहासिक दृष्टि से इस दुर्ग का निर्माण 7वीं–8वीं शताब्दी में मौर्य राजा चित्रांगद ने अपने नाम पर चित्रकूट दुर्ग का निर्माण करवाया जो 9 वीं शताब्दी में गुहिल वंशी बाप्पा रावल(कालभोज) के अधिकार में आ गया। तब से भारत की आजादी पर्यंत इसी वंश का शासन रहा जो विश्व में एक ही वंश का सर्वाधिक लम्बा शासन माना जाता है। यहाँ के वीरों के द्वारा मातृभूमि की स्वतंत्रता एवं आन–बान और शान की रक्षार्थ हुए बलिदानों, वीरांगनाओं द्वारा चरित्र की रक्षार्थ किये गए जौहर, मीरा की भक्ति, संत निरभै नाथ की तपोस्थली के कारण इस दुर्ग के लिए एक छंद यहाँ के जन–जन के कंठ से गुंजित होता है–

गौमुख गिरे झरना झरे,निरभैनाथ की ठौड़।
करोड़ वर्ष तपस्या करे, जद पावे गढ़ चित्तौड़।।[1]

इस दुर्ग की धरती देश–भक्त वीरों के रक्त से सींचित है। समूचा क्षेत्र शूरवीरों, योद्धाओं के बलिदान से आच्छादित है। ऐसी धरती पर भावनाशील पथिक का पैर उठा हुआ ही रह जाता है। हृदय में यह भावना उत्पन्न होती है कि इस बलिदानी धरती और सती–सूरमाओं की स्थली पर कैसे पैर धरूँ?

पग पग सूरां देवली, पग–पग सतियाँ ठौड़।
मन डरपै पग मेलता, त्यागी गढ़ चितौड़।।[2]

इस दुर्ग का इतिहास स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान के लिए मर मिटने का रहा है। जिसको अल्लाउद्दीन खिलजी, बहादुरशाह (गुजरात), अकबर, औरंगजेब जैसे शक्तिशाली शासक झुका नहीं पाए। यह धरा बाप्पा रावल, खुमाण, रावल रतन सिंह, हम्मीर, कुम्भा, सांगा, प्रताप जैसे महान शासकों, गौरा–बादल, जयमल–पत्ता–कल्ला जैसे सेना नायकों, चुंडा जैसे त्यागियों, भामाशाह–से दानियों, मीरा जैसी भक्त कवयित्री, पन्ना जैसी बलिदानी माता, पद्मिनी, कर्मवती, फूलवती जैसी सतियों, जवाहर बाई जैसी वीरांगनाओं के लिए विश्व भर में विख्यात है। "चित्तौड़गढ़ मात्र एक दुर्ग ही नहीं है, बल्कि एक अद्भुत राष्ट्र का ज्वलंत एवं मूर्तिमान इतिहास है। यह एक ऐसी परंपरा का प्रतीक है, जो शताब्दियों से अपनी मातृभूमि के लिए मर मिटने की प्रेरणा देता है। वीरों और वीरांगनाओं के रुधिर एवं भस्म ने मिलकर इस दुर्ग को ऐसा पक्का एवं गहरा रंग दिया है कि इसकी चमक सदियों से वैसी की वैसी ही बनी हुई है।"[3]

बीसवीं सदी के प्रथम दशक में भारतीय जनमानस अंग्रेजों की दासता से मुक्ति पाने के लिए छटपटाने लगा तथा अपने हर संभव प्रयास करने लगा। नेतृत्व प्रदान किया भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने, भले ही उसकी स्थापना 1885 ई. में अंग्रेज अधिकारी ए.ओ. ह्यूम ने अंग्रेज सत्ता के सेफ्टी वाल्व के रूप में की हो, किंतु आज वही राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व कर रही थी। जब–जब समाज और राष्ट्र लड़खड़ाता है तो साहित्य उसे संभालता है, उसे शक्ति देता है और पथ प्रदर्शनार्थ मशाल लेकर आगे–आगे चलता है। हिंदी साहित्य के इतिहास में यह शुरुआत कविवर भारतेंदु ने अपने नाटकों से की, जिसमें उन्होंने राज भक्ति और राष्ट्रभक्ति मिश्रित स्वरूप में ही सही लिखा–

अंग्रेज राज साज सजे सब भारी।
पे धन विदेश चली जात, यहे अति ख्वारी।।[4]

अंग्रेजों की शोषणकारी नीतियों के चलते भारतीय लोगों की दुर्दशा देख कर उन्होंने लिखा–

रोवहु सब मिलि आवहु भारत भाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई॥[5]

भारतेंदु युग की यह दबी आवाज द्विवेदी युग तक आते–आते प्रखर हो चुकी थी। तब देश के युवाओं को स्वातंत्र्य समर में कूद पड़ने के लिए प्रेरणा देने के लिए साहित्यकारों को ऐसे चरित्रों की आवश्यकता हुई जो देश के लिए जिए और आवश्यकता पड़ने पर देश के लिए मर मिटे। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए साहित्यकारों का ध्यान स्वतंत्रता, स्वाभिमान, त्याग और बलिदान के प्रतीक चित्तौड़ की तरफ आकृष्ट हुआ। चित्तौड़ ने उन्हें निराश नहीं किया बल्कि एक से बढ़कर एक स्त्री–पुरुष चरित्र प्रदान किए जिन पर साहित्यकारों की कलम बड़े ही गौरव के साथ चली।

इस दौर में राष्ट्र भक्ति पूर्ण साहित्य लेखन के प्रखर नेतृत्व का शंखनाद हिंदी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 1909 ई. में प्रकाशित अपने प्रथम खंडकाव्य 'रंग में भंग' लिखकर किया। रस रचना का कथानक चित्तौड़ और बूंदी के राजपूतों की आन–बान और शान पर मर मिटने वाले राजपूत वीरों का है। इस रचना में चित्तौड़ के राजपूत बूँदी के राजपूतों द्वारा किए गए अपने राजकवि बारूपाल का अपमान तत्पश्चात उसके बलिदान को सह नहीं सके और विवाहोत्सव छोड़कर अपने कवि की मृत्यु का बदला लेने के लिए युद्ध करते हैं। सैकड़ों राजपूत लड़ते–लड़ते बलिदान हो जाते हैं। बूंदी की राजकुमारी भी अपने पति चित्तौड़ के राजकुमार क्षेत्र सिंह (खेता) के साथ सती हो जाती है। प्रतिशोध की आग में जल रहे खेता के भाई चित्तौड़ के राणा लाखा बूंदी को ध्वस्त करके ही अन–जल ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करते हैं। अपने सामंतों की सलाह के अनुसार बूंदी के नकली दुर्ग पर आक्रमण करते हैं। तब बूंदी का हाड़ा कुंभा जो राणा की ही सेवा में नियुक्त था, अपनी मातृभूमि के नकली दुर्ग का भी अपमान होता नहीं देख पाया और उसकी रक्षा के लिए खून के आखिरी कतरे तक युद्ध करता हुआ बलिदान हो गया। गुप्तजी कुंभा के चरित्र को इस प्रकार वर्णित करते हैं–

स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्मभूमि कही गई।
सेवनिया है सभी की वह महामहिमा मई।
फिर अनादर क्या उसी का में खड़ा देखा करूँ।
भीरू हूँ क्या मैं जो मृत्यु से मन में डरूँ।।
तोड़ने दूँ क्या इसे नकली किला में मानकर।
पूजते हैं भक्त क्या प्रभु मूर्ति को जड़ जान कर।
भ्रांत जन उसको भले ही जड़ कहे अज्ञान से।
देखते भगवान को धीमान उसे ध्यान से।।
उष्ण शोणितधार से धरणी वहाँ की धो गई।
कुंभ के इस कृत्य से कृत–कृत्य बूंदी हो गई।
इस तरह उस वीर ने प्रस्थान सुरपुर को किया।
राजपूतों की धरा को कीर्तिध्वलित कर दिया।।[6]

जाहिर है यहाँ गुप्त जी हाड़ा कुम्भा के माध्यम से भारतीय युवक–युवतियों को मातृभूमि की आजादी के लिए आह्वान कर रहे हैं। उनका उद्देश यह स्मरण कराना रहा है कि तुम भी उसी चित्तौड़ की वीर परंपरा से हो जो अपने चारण का अपमान न सह सके, हाड़ा वीर कुम्भा की परंपरा से हो जो असली तो क्या अपनी मातृभूमि के नकली दुर्ग के अपमान को भी नहीं सह सका और लड़ते–लड़ते बलिदान हो गया तथा सदा के लिए अमर और वन्दनीय हो गया। गुप्त जी की दूसरी रचना 1912 ई. में 'भारत भारती' प्रकाशित हुई, जिसमें वे भारत के गौरवशाली अतीत, दीन–हीन वर्तमान और उज्ज्वल भविष्य का विषय उठाते हैं और भारतीय जनमानस में गौरव का भाव जगाते हुए उन्हें स्वातंत्र्य समर में कूद पड़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इस रचना में भी गुप्त जी का ध्यान चित्तौड़ की ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सका और एक पृष्ठ पर स्वातंत्र्य वीर प्रताप के राष्ट्रीय चरित्र को उठाते हैं, जिन्होंने अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान की रक्षार्थ अकबर जैसे शक्तिशाली मुगल शासक से जीवन भर संघर्ष किया, महलों को छोड़ कर जंगल–जंगल में भटके, छप्पन भोग छोड़ घास की रोटियाँ खाई किंतु बादशाह की अधीनता स्वीकार नहीं की। गुप्त जी ने उनके कृतित्व को इस तरह उकेरा है–

चित्तौड़ चंपक ही रहा यद्यपि यवन अलि हो गए,
धर्मार्थ हल्दीघाटी में कितने सुभट बलि हो गए।
कुल–मान जब तक प्राण तब तक, यह नहीं तो वह नहीं,
मेवाड़ भर में वक्तृताएँ गूँजती ऐसी रही।।[7]

पुरुषों ने ही नहीं चित्तौड़ की वीरांगनाओं ने भी अपने स्वाभिमान, स्वातंत्र्य एवं चरित्र की रक्षार्थ पुरुषों से होड़ लगाई तथा तीन बार जौहर व्रत का वरण करते हुए जीते जी अग्नि की धधकती लपटों में कूद कर अपनी ईहलीला को विराम दिया। प्रथम जौहर 1303 ई. में रावल रतन सिंह की भार्या पद्मिनी के नेतृत्व में आतताई अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय, द्वितीय जौहर 1534 ई. में सांगा की पत्नी राजमाता कर्मवती के नेतृत्व में बहादुरशाह(गुजरात) के आक्रमण के समय तथा तृतीय जौहर 1568 ई. सिसोदिया सरदार पत्ता की जीवन संगिनी फूलवती के नेतृत्व में अकबर के आक्रमण के दौरान हुआ जो विश्व विख्यात करुण कहानी है। गुप्त जी लिखते हैं–

विख्यात है जौहर यहाँ के आज भी है लोक में,
हम मग्न हैं उन पद्मिनी–सी देवियों के शोक में।
आर्य–स्त्रियाँ निज धर्म पर मरती हुई डरती नहीं,
साद्यंत सर्व सतीत्व– शिक्षा विश्व में मिलती यहीं।।[8]

इसी विषय को आधार बनाकर श्याम नारायण पांडेय ने 'जौहर' नाम से महाकाव्य लिखा, जो 1945 ई. में प्रकाशित हुआ। उस समय देश का आजादी का आंदोलन परवान पर था। उन्हें यह आवश्यकता महसूस हुई कि देश की आधी आबादी अर्थात् स्त्रियाँ जब तक इस आंदोलन में भाग नहीं लेंगी तब तक देश को आजादी मिलना मुश्किल है। तब पांडेय जी चित्तौड़ को तीर्थराज कहते हुए लिखते हैं –

मुझे न जाना गंगासागर, मुझे न रामेश्वर काशी,
तीर्थराज चित्तौड़ देखने को मेरी आँखें प्यासी।।[9]

क्यों चित्तौड़ तीर्थराज है, इसे स्पष्ट करते हुए वे आगे लिखते हैं–

जहाँ आन पर माँ बहनों की,
जला–जला पावन होली।
वीर मांडवी गर्वित स्वर से
जय माँ की जय जय बोली।।
सुंदरियों ने जहाँ देश हित
जौहर व्रत करना सीखा
स्वतंत्रता के लिए जहाँ
बच्चों ने भी मरना सीखा।।[10]

पांडेय जी यह अच्छी तरह से जानते थे कि अंग्रेज हिंदू और मुसलमान को लड़ा कर देश पर वर्षों से राज कर रहे हैं। जब तक हिंदू और मुसलमान एकजुट होकर अंग्रेजों का सामना नहीं करेंगे हिंदुस्तान आजाद नहीं होगा। तब जौहर महाकाव्य में वे अलाउद्दीन जो कि उस समय साम्राज्यवादी अंग्रेजों का प्रतीक रहा, को लक्ष्य करके लिखते हैं–

हिंदू–मुसलमान ही क्या सब
थूक–थूक उस पर बोले।
पर नारी को गया छेड़ने,
धिक् पापी सेना को ले।।
सती वचन पर गत गौरव से
प्रीति जोड़नी ही होगी।
पराधीनता की बेड़ी
ललकार तोड़नी ही होगी।।[11]

जौहर महाकाव्य के अंतिम छंदों में पांडेय जी भारत के युवाओं को स्वातंत्र्य समर में कूद पड़ने का आह्वान करते हुए ललकारते हैं–

भारत के पुण्यों का फल जो,
जौहर में अवतार हुआ।
नाच उठी कविता विह्वल हो
जन–जन का उपकार हुआ।।
इसीलिए है विनय चाप ले
चरणों में टंकार करो।
जौहर के छंदों में गरजो,
वर्णों में हुंकार करो।।[12]

वीर काव्य के अन्धड़ कवि श्यामनारायण पाण्डेय अपने महाकाव्य 'हल्दीघाटी' में भारतीय स्वाधीनता समर के सेनानियों को अपने लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ते रहने और स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व बलिदान कर देने की प्रेरणा देने के लिए प्रताप का चरित्र सामने लाते हैं। पाण्डेय जी के शब्दों में हिदुआ सूरज मेवाड़ के महाराणा प्रताप मानसिंह को देश एवं निज धर्म द्रोही तथा राजपूत कुल कलंक ठहराते हुए इस प्रकार फटकार लगाते हैं– जो रण को ललकार रहे हो

तो आकर लड़ लेना।
चढ़ आना यदि चाह रहे
चित्तौड़ वीरगढ़ लेना।।
कहाँ रहे जब स्वतंत्रता का
मेरा बिगुल बजा था
जाति–धर्म के मुझ रक्षक को
तुमने क्या समझा था।।[13]

अकेला पुरुष कुछ नहीं कर पाता प्रत्येक सफल पुरुष के पीछे स्त्री का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। जब पुरुष के कदम अपने विराट लक्ष्य की डगर पर डगमगाने लगे तो स्त्री ही उसे संभालती रही है। प्रताप भी मेवाड़ की आजादी के संघर्ष में अकेले न थे, उनकी पत्नी अजबदे उनके कदम से कदम मिलाकर साथ चली। कहा जाता है कि एक बार प्रताप के मन में कमजोरी आ गई और उन्होंने अपनी पत्नी से अकबर को संधि पत्र लिखने के विषय में चर्चा की तो अजबदे से प्रताप को जो जवाब मिला, उसे पाण्डेय जी ने अपने काव्य में इस अंदाज में वर्णित किया –

तू संधि–पत्र लिखने का
कह कितना है अधिकारी।
जब बन्दी माँ के दृग से
अब तक आँसू है जारी।।[14]

हल्दीघाटी की यह अजबदे भारत के आजादी के आन्दोलन के दौर की प्रत्येक स्त्री की अभिव्यंजना है। वे अपने सुहाग को क्रांति के लिए वीरोचित कर्त्तव्य का स्मरण कराती हुई ललकार रहीं हैं–

थक गया समर से तो अब
रक्षा का भार मुझे दे।
मैं चंडी–सी बन जाऊँ
अपनी तलवार मुझे दे।।[15]

पाण्डेय जी क्रांतिकारियों के अस्त्र–शस्त्र एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत के धन कुबेरों को प्रेरित करने भामाशाह का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। भामाशाह प्रताप से कहते हैं–

एकत्र करो इस धन से
तुम सेना वेतन–भोगी।
तुम एक बार फिर जूझो
अब विजय तुम्हारी होगी।।[16]

कोई भी लड़ाई बिना धन के नहीं लड़ी जा सकती। भामाशाह से धन प्राप्त होने पर प्रताप का उत्साह बढ़ जाता है और वे देश की स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए संकल्प करते हैं–

जब तक स्वतंत्र यह देश नहीं
है कट सकता नख– केस नहीं।
मरने–काटने का क्लेस नहीं
कम हो सकता आवेश नहीं।।[17]

तब क्रांतिकारियों के प्रतीक राणा के सैनिकों ने भी विजयिनी हुँकार भरी–

राणा प्रताप की जय बोले
अपने नरेश की जय बोले
भारत माता की जय बोले
मेवाड़ देश की जय बोले।।[18]

इस तरह पाण्डेय जी वीर धरा राजस्थान के युवाओं को प्रताप के शौर्य का स्मरण दिलाते हुए आह्वान करते हैं–

स्वतंत्रता का झंडा तान
कब गरजेगा राजस्थान।।[19]

अंग्रेज भारत पर लम्बे समय राज करने के लिए फूट डालो और राज करो की नीति का सहारा लेते हुए भारत में हिन्दू–मुस्लिम में झगड़े के बीज बो चुके थे। ऐतिहासिक नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी स्वातंत्र्य आन्दोलन के दौरान हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द की आवश्यकता महसूस कर रहे थे। तब उन्होंने चित्तौड़ के सबसे शक्तिशाली राणा सांगा की विधवा पत्नी कर्मावती के द्वारा गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के चित्तौड़ आक्रमण के समय दुर्ग की रक्षार्थ दिल्ली के मुग़ल बादशाह हुमायूँ को रक्षासूत्र भेजने के प्रसंग को आधार बनाते हुए 1938 ई. में रक्षाबंधन नाटक की रचना करते हैं, जिसमें हुमायूँ हिन्दू महारानी का रक्षासूत्र पाकर अपने ही धर्म के अत्याचारी गुजरात के बहादुरशाह के विरुद्ध सैना लेकर राखिबंध बहिन कर्मावती की रक्षा करने सैना लेकर प्रयाण करता है, किन्तु चित्तौड़ पहुँचने में देरी हो जाती है और चित्तौड़ बर्बाद हो जाता है। चित्तौड़ का दूसरा जौहर रचा जाता है। जब वह पहुँचता है तो कर्मावती की चिता पर पश्चाताप के अश्रू बहाता हुआ हाथ जोड़ कर कहता है–"बहन मुझे माफ़ करो,

मैं तुम्हारा नालायक भाई हूँ। बहुत कौशिश करने पर भी मैं तुम्हें बचा न सका, पर तुम्हारे मेवाड़ को तुम्हारे दुश्मन के हाथ से छीन कर फिर मेवाड़ियों को सौंप जाता हूँ। मगर प्यारी बहन! दिल में एक कसक, बेबसी की एक आह छुपाए लिए जा रहा हूँ। अफ़सोस तुम्हारी राखी का कर्ज न चूका पाया।"[20] इसी नाटक के माध्यम से एक चारणी के मुख से प्रेमी जी प्रयाण गीत में कहलवाते हैं–

वीरों समरभूमि में जाओ
सोचो तो मेवाड़ निवासी
माँ को होने दोगे दासी?
ओ बलिदानों के विश्वासी । ।[21]

देश की आजादी के आन्दोलन में न जाने कितनी माताएँ अपने पुत्र रूपी दीपक का दान मातृभूमि के मंदिर में कर चुकीं थीं और न जाने कितने दीपदान किये जाने शेष थे। एकांकी सम्राट रामकुमार वर्मा को चित्तौड़ की पन्ना धाय का मेवाड़ की रक्षार्थ राजकुमार उदय सिंह को बनवीर से बचाने के लिए अपने एक मात्र पुत्र चन्दन का बलिदान स्मरण हो आया और 1947 ई. के आसपास दीपदान एकांकी लिखी जो 1950 ई. में प्रकाशित हुई। जिसमें बनवीर उदय सिंह को मारने के लिए तुलजा भवानी मंदिर में दीपदान महोत्सव का आयोजन करता है ताकि जनता का ध्यान भटका रहे। पन्ना आने वाले संकट को भाँप जाती है और अपने पुत्र चन्दन को उदय सिंह के पलंग पर सुलाकर कहती है– "जाओ यह रक्तधारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो। आज मैंने भी दीपदान किया है। अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है।"[22]

देश की रक्षा के लिए पन्ना के जैसा त्याग दुनिया में अद्वितीय है। जब देश संकट में हो तो स्त्रियों के लिए पन्ना से बढ़कर कोई प्रेरणा नहीं हो सकती। इसी विषय को लेकर गोविन्द वल्लभ पन्त 1935 ई. में राजमुकुट नाटक की रचना करते हैं, जिसमें पन्ना के मुख से उदय सिंह को मेवाड़ देश के गौरवशाली इतिहास का गीत सुनाया जाकर देश के लोगों में देश के प्रति गौरव का भाव जगाने का प्रयास किया गया है। पन्ना मेवाड़ की गौरवशाली परंपरा के विषय में गाती है –

कुम्भ खुमाण समान वीरवर
बप्पा सांगा से नर कुंजर ।
चमकी वसुधा जिनको पाकर
जयति सूर्यकुल जयति तिमिरहर ।।
अबलाओं ने भी असि लेकर
किए जहाँ पर युद्ध भयंकर ।
जिनके अमर हुए हैं जौहर
हो नती उन सतियों के पद पर ।।[23]

छायावादी युग के प्रसिद्ध नाटक कार जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद अपने नाटक 'प्रताप प्रतिज्ञा'(1939 ई.) में प्रताप के मुख से आजादी की शपथ दिलवाते हुए लिखते हैं– "जब तक चित्तौड़ का उद्धार न कर लूँगा सत्य कहता हूँ– कुटी में रहूँगा, पत्तल में खाऊँगा, तृणों पर सोऊँगा। इसी क्षण से मेरे लिए ये राज प्रासाद, ये स्वर्ण शृंगार और ये आनंद विहार तृण से भी तुच्छ हैं। माँ का स्वर्ण संसार आज श्मशान हो रहा है, प्यारे चित्तौड़ में आज एक भी दीपक नहीं, उसका सम्मान आज विदेशियों के अत्याचारों की पदरज बना हुआ है, क्या अब भी हम सुख की नींद सो सकेंगे?"[24]

स्वाधीनता के सन्दर्भ में चित्तौड़ विषयक हिंदी साहित्य की परंपरा जिसकी शुरुआत संभवतया मैथिली शरण गुप्त से हुई। वह धारा राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में आज तक चल रही है। इस आलेख में प्रस्तुत की गई यह शृंखला बहुत लंबी है। उनको यहाँ छोटे से दायरे में उल्लिखित करना संभव नहीं है, किंतु यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में जब युवाओं को, माताओं, बहनों को जागृत करने की आवश्यकता पड़ी, तब हिंदी के साहित्यकारों का ध्यान चित्तौड़ के स्वर्णिम इतिहास की ओर गया और चित्तौड़ ने प्रभूत मात्रा में ऐतिहासिक विषय वस्तु उपलब्ध करवाई। चित्तौड़ का लगभग 1000 वर्ष का स्वाधीनता के लिए संघर्ष इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। जहाँ एक ओर बप्पा रावल, रावल रतन सिंह, गोरा–बादल, जयमल–पत्ता–कल्ला, सांगा, चुंडा, कुंभा, प्रताप जैसे शौर्य–शक्ति–शील के धनी पुरुष पात्र हैं, तो वहीं पद्मिनी, पन्ना, कर्मावती, फूलवती, जवाहर बाई, मीरा, किरणा देवी, कोशीथल महारानी जैसी उदात्त चरित्र की धनि वीरांगनाओं का भी बड़ा योगदान रहा है, जो कि हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं के नायक– नायिका के रूप में सामने आते रहे हैं। किसी अज्ञात कवि ने चित्तौड़ जो कि मेवाड़ की आत्मा है के विषय में क्या खूब लिखा है–

आजादी का दीपक हरदम जलता था मेवाड़ में,
बुझा नहीं जो भीषण आंधी वर्षा की बौछार में,
आजादी की रक्षा के हित वीरों की तलवार उठी,
हल्दीघाटी के आंगन में प्रलयंकर हुँकार उठी।
चेतक पर चढ़कर के जिसने लिया हाथ में भाला था,
महाराणा प्रताप सदा आजादी का मतवाला था,
मातृभूमि के चरणों में जिसने जीवन धन वारा है।।
देश के दीवानों का यह आजादी का नारा है... ।।[25]

संदर्भ

1. भँवरल सिसोदिया (सं. शिव मृदुल), पहल की अनुभूतियाँ, शकुन्तला देवी सिसोदिया स्मृति ट्रस्टप्रकाशन, 2019 ई., पृष्ठ 26
2. उम्मेद सिंह राठौड़, ऐतिहासिक गढ़ चितौड़, शार्दूल स्मृति संस्थान धौली, जिला चित्तौड़, 2003, पृ.151
3. डॉ. ए. एल. जैन, – 'अतुल्य जैन धर्म एवं गढ़ चित्तौड़', चौधरी ऑफसेट प्रा. लि. उदयपुर, 2014 ई., पृष्ठ 75
4. विश्वनाथ त्रिपाठी 'हिंदी साहित्य का सरल इतिहास' ओरियंट ब्लेकस्वान प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, संस्करण 2012 ई. पृष्ठ 87
5. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', मयूर पेपर बैक्स नोएडा, संस्करण 2013 ई., पृष्ठ 442
6. मैथिली शरण गुप्त, 'रंग में भंग' साहित्य सदन चिरगांव, 1984 संव, पृष्ठ 32
7. मैथिली शरण गुप्त 'भारत भारती', साहित्य सदन चिरगांव, संस्करण 1984 संवत्, पृष्ठ 79
8. वही, पृष्ठ 79
9. श्याम नारायण पाण्डेय, श्जौहरश, विश्वविद्यालय प्रकाशन वारणसी, संस्करण 2012 ई. पृष्ठ 5
10. वही, पृष्ठ 5
11. वही, पृष्ठ 186
12. वही, पृष्ठ 202
13. कृष्णचंद्र लाल, 'श्यामनारायण पांडेय' साहित्य अकादेमी नयी दिल्ली, संस्करण 2002, पृष्ठ 71
14. वही, पृष्ठ 77
15. वही, पृष्ठ 80
16. वही, पृष्ठ 80
17. वही, पृष्ठ 80
18. वही, पृष्ठ 78
19. वही, पृष्ठ 79

20. हरिकृष्ण प्रेमी, रक्षाबंधन, आत्माराम एंड संस, दिल्ली 1938, पृष्ठ 124
21. हरिकृष्ण प्रेमी, रक्षाबंधन, आत्माराम एंड संस, दिल्ली 1938 पृष्ठ 65
22. रामकुमार वर्मा, दीपदान (इतिहास के स्वर एकांकी संग्रह में संकलित), आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली, 1969 ई., पृष्ठ 302
23. गोविन्द वल्लभ पन्त (सं.दुलारे लाल), राजमुकुट, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, 1935 ई., पृष्ठ 59
24. जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, प्रताप प्रतिज्ञा, हिंदी भवन लाहौर, 1939 ई., पृ. 12
25. संघ गीत, ज्ञान गंगा प्रकाशन जयपुर, संस्करण 2012 पृष्ठ 78